International Journal of Hindi Research
ISSN: 2455-2232; Impact Factor: RJIF 5.22
Received: 25-06-2019; Accepted: 26-07-2019
www.hindijournal.com
Volume 5; Issue 5; September 2019; Page No. 52-54

संत तुलसीदास और सामाजिक समरसता

रश्मि किरण
ग्राम– गोपाल रोड, मंदिर घाट, सुलतानगंज (भागलपुर) बिहार, भारत।

प्रस्तावना

जिस प्रकार शब्द से अर्थ को और अर्थ से शब्द को तथा शरीर से प्राण को और प्राण से शरीर को पृथक नहीं किया जा सकता उसी प्रकार राष्ट्र को भी साहित्य से पृथक नहीं कर सकते और न साहित्य को राष्ट्र से। शरीर और प्राण का संबंध अन्योन्याश्रित है। बिना–शरीर के प्राणों का अस्तित्व नहीं और बिना प्राण के शरीर का महत्व नहीं, ठीक उसी प्रकार साहित्य प्राण है, और राष्ट्र उसका शरीर। जिस प्रकार निर्जीव शरीर का कोई मूल्य नहीं होता ठीक उसी प्रकार साहित्य हीन राष्ट्र का कोई मूल्य नहीं होता।

अंधकार है वहाँ जहाँ आदित्य नहीं है।
मुर्दा है वह देश जहाँ साहित्य नहीं है। (1)

उसी साहित्य जगत में गोस्वामी तुलसीदास जी का आविर्भाव हुआ। इनके आविर्भाव के समय भारतवर्ष मुगलों से आक्रान्त था। देश की जनता राजनीतिक, धार्मिक, सांस्कृतिक और साहित्यिक सभी दृष्टिकोणों से त्रस्त थी। उचित नेतृत्व के अभाव में जनता के समक्ष न कोई आदर्श था और न कोई उद्देश्य। विदेशियों के सम्पर्क से भारतीयों में विलासप्रियता घर कर चुकी थी। निम्न वर्ग में अशिक्षा और निर्धनता पर्याप्त मात्रा में थी। लोग अकर्मण्य होते जा रहे थे। साधु–सन्यासी हो जाना साधारण बात बन गई थी, जैसा कि गोस्वामी तुलसीदास जी स्वयं कहते है। (2)

नारि मुई घर सम्पत्ति नासी,
मूँड मुँडाय भए संन्यासी। (3)

विद्वानों, पण्डितों और ज्ञानियों का समाज में विशेष आदर नहीं हो रहा था। पण्डित वही माना जाता था जो ज्यादा बोल सकता था–

'' पण्डित सोई जो गाल बजावा'' (4)

धार्मिक क्षेत्र में एक सम्प्रदाय को मानने वाले दूसरे सम्प्रदाय के लोग अपने मत के समर्थन में लड़ने–मरने के लिए तैयार रहते थे। देश की ऐसी ही परिस्थितियों में संत तुलसीदास का पदार्पण साहित्य जगत में आशा की किरण के साथ हुआ।

तुलसीदास जी का स्थान हिन्दी साहित्य में सर्वोपरि है। वे उच्चकोटि के कलाकार, प्रकाण्ड पंडित, दर्शन और धर्म के व्याख्याता थे। उन्होंने राम की लोक पावन कथा द्वारा मानव जीवन की गुत्थियों को बड़ी कुशलता से सुलझाया तथा राजनैतिक सामाजिक एवं धार्मिक क्षेत्रों के समस्त आदर्शो का सर्वागींण प्रतिपादन किया। गोस्वामी जी स्वयं कहते है कि :–

कीरति, भनिति, भूति भलि सोई,
सुरसरि सम सम कर हित होई। (5)

अर्थात् यश, कविता और वैभव वही श्रेष्ठ है, जिससे गंगा के समान सबका कल्याण हो। इस दृष्टि से तूलसी का साहित्य सभी प्रकार के व्यक्तियो के लिये उपयोगी है।

जिस युग में तुलसीदास जी का जन्म हुआ था उस युग में धर्म, समाज राजनीति आदि क्षेत्रों में पारस्परिक मतभेद और वैमनस्य का बोलबाला था। धर्म के क्षेत्र में एक और हिन्दू–मुस्लिम, सिक्ख, ईसाई तथा दूसरी और भक्ति के क्षेत्र में शैव–शक्ति, वैष्णव मतों में आपसी ईर्ष्या–द्वेष बढ़ता जा रहा था। हिन्दू समाज अवर्ण–सवर्ण के भेदभाव में विभक्त होता दिखलाई पड़ रहा था। घोर अशांति का वातावरण उत्पन्न हो गया था। ऐसे समय में गोस्वामी तुलसीदास ने तत्कालीन परिस्थितियों का गहराई से अध्ययन करके समाज में व्याप्त वैमनस्य को दूर करने का प्रयत्न किया। उन्होंने इस विषमता को दूर करने के लिए समन्वय की प्रवृति को अपनाया। उन्होंने धार्मिक, सामाजिक पारिवारिक, राजनैतिक सभी क्षेत्रों में समन्वय स्थापित करने का प्रयास किया है जो इस प्रकार है :–

(1) धार्मिक क्षेत्रः धर्म के क्षेत्र (हिन्दुओ) में शैव, वैष्णव शाक्तों, के रूप में विभिन्न सम्प्रदाय दिन–प्रतिदिन कट्टरता की और बढ़ रहे थे। सुगुणोपासक जहाँ निर्गुण मार्ग को नीरस बताकर उसकी निन्दा कर रहे थे। जनता 'ज्ञान' कर्म और भक्ति के बीच चुनाव को लेकर असमंजस में थी। सभी वैष्णव आचार्य शंकर के निर्गुण ब्रह्मवाद और माया के विरोधी थे तो सभी अद्वैतवादी मध्वाचार्य के द्वैतवाद के विपक्षी हो गए थे। राजा–प्रजा वेद शास्त्र व व्यवहार के बीच का फासला बढ़ता जा रहा था। ऐसे समय में तुलसीदास अपने काव्य के माध्यम से सबमें सामंजस्य बैठाने का महा प्रयास कर रहे थे। वे राम के स्वरूप का निरूपण करते समय सगुण निर्गुण दोनों ही रूपो को एक बताया :–

''सगुनहिं अगुनहि नहीं कुछ भेदा।

गावहिं मुनि पुरान बुध बेदा।।
अगुन सगुन दुइ ब्रह्म सरूपा।
अकथ अगाध अनादि अनूपा।। (6)

तुलसीदास ने बताया कि जिस प्रकार अग्नि के दो रूप है, एक अव्यक्त और एक व्यक्त। इसका दारुगत अव्यक्त रुप ही व्यक्त होने पर दृश्यमान हो जाता है।

''एक दारूगत देखिए एकू।
पावक जुग सम ब्रह्म विवेकू।। (7)

उसी प्रकार, ईश्वर का भी जो निर्गुण व निराकार रूप है, जो दृष्टव्य नहीं है वही प्रकट होने पर सगुण व साकार रूप में दिखाई देने लगता है :–

''अगुन अरूप अलख अज जोई।
भगत प्रेम बस सगुन सो होई। (8)

शैव और वैष्णव दोनों मतों में समन्वय स्थापित करने के लिए एक

ओर शिव के मुँह से कहलवाया है–

''सोई मम इष्ट देव रघुवीरा।
सेवत जाइ सद मुनि धीरा।।(9)

और शिव को रामजी का उपासक सिद्ध कर दिया, तो दुसरी ओर उन्होने राम से कहलवाया–

शिव द्रोही मम दास कहाया।
सो नर मोहि सपनेहुं नाहिं भाया।। (10)

इस प्रकार, राम को शिव जी का तथा शिव को राम का अनन्य भक्त सिद्ध कर दिया।
तुलसीदास के समय में ज्ञानियों और भक्तों में भी बड़ा विवाद था। वे एक–दूसरे को तुच्छ समझते थे। तुलसीदास ने ज्ञान और भक्ति दोनों की महत्ता स्थापित की और कहा कि दोनों मार्गों में कोई भेद नही है।

भगतहि ज्ञानहिं नहिं कुछ भेदा।
उभय हरहिं भव सम्भव खेदा।। (11)

इस प्रकार उन्होंने दोनों की समता सिद्ध की, उन्होंने भक्ति को ज्ञान और वैराग्य से युक्त बताया। भक्ति ज्ञान से संयुक्त होकर ही सुशोभित होती है।

2. समाजिक क्षेत्रः तुलसी युगीन समाज में जाति पांति और अस्पृश्यता का बोल बाला था। उच्चवर्ण के व्यक्ति निम्न वर्ण के व्यक्तियों को हेय दृष्टि से देखते थे। शुद्र वर्ण के लोग सभी प्रकार के सामाजिक एवं धार्मिक यहाँ तक कि शैक्षिक अधिकारों से भी वंचित थे। ऐसे में तुलसी राम और उनकी भक्ति के द्वारा उन सभी सामाजिक विषमताओं को दूर कर सब के लिए एक ऐसा मंच निर्मित करते है जहाँ अपने पराए का भेदभाव मिट जाता है। उन्होंने 'रामचरितमानस' में ब्राह्मण कुलोत्पन्न गुरू वशिष्ठ को शुद्रकुल में उत्पन्न निषादराज से भेंट करते हुए दिखाकर ब्राह्मण एवं शुद्र के माध्यम से समाज में एकता का भाव जगाया। इसी प्रकार निषाद, केवट शबरी आदि अनेक उदाहरण है। राम और निषादराज तथा भरत और निषादराज की भेंट भी समाज में उज्ज्वल आदर्श प्रस्तुत करती हैः–

'' करत दंडवत देखि तेहि भारत लीन्ह उर लाई।
मनहुँ लखन सब भेंट भइ प्रेम न हृदयँ समाइ।।'' (12)

भक्ति और मुक्ति की प्राप्ति सामाजिक नही व्यक्तिगत चीजें हैं। तुलसी ने अच्छे से अच्छे भक्त को प्रतिपाद्य माना है। ऐसा करते समय उन्होंने इस बात पर भी ध्यान दिया है कि मनुष्य समाज में रहता है और उसका कर्त्तव्य जिस समाज में वह रहता है उसके प्रति कुछ न कुछ अवश्य है। तुलसी यह भी मानते है कि व्यक्ति अपने आचारण और अपने कर्त्तव्य से न केवल अपनी ही उन्नति और अपना ही उत्कर्ष करना चाहिए, वरन उसे समाज को आगे बढ़ाने के लिए भी प्रयत्न करना चाहिए।
3. पारिवारिक क्षेत्रः तुलसीदास ने श्रीराम के परिवार के माध्यम से पारिवारिक जीवन का उत्कृष्ट आदर्श प्रस्तुत किया है। उन्होंने पिता और पुत्र, पति और पत्नी, सास और पुत्रवधु, भाई–भाई, स्वामी और सेवक तथा पत्नी और सपत्नी के बीच मधुर संबंधों का आदर्श प्रस्तुत किया है। तुलसी के राम जितने पितृभक्त थे, उतने ही मातृभक्त भी थे तथा माता–पिता भी राम के प्रति वैसी ही भक्ति रखते थे। इसी प्रकार वधुएँ जितना सम्मान अपनी सास का करती थी, उतना ही स्नेह उन्हें प्रतिदान स्वरूप प्राप्त भी होता था।
पारिवारिक व नैतिक मूल्यों के पक्षधर मर्यादावादी तुलसी ने देखा कि समाज में पारिवारिक मान्यताएँ लगभग समाप्त होती जा रही है। पति–पत्नी, पिता–पुत्र, भाई–भाई में जो स्नेह संबंध होना चाएि वह लगभग समाप्ति की ओर है पिता और पुत्र दोनों स्वार्थ प्रेरित हैं। पति–पत्नी के संबंधो में आत्मीयता का दिखावा अधिक हो गया है। पुत्र शादी होते ही पत्नी का साथ पाकर माता–पिता को बेसहारा छोड़ देता है। शिक्षा का उद्देश्य ज्ञानार्जन न होकर धनार्जन रह गया है पुरूष 'परत्रिय लंपट कपट सयाने' (13) हो गए है स्त्रियाँ 'गुन मंदिर सुन्दर पतित्यागी भजहिं नारी पर पुरूष अभागी।' (14) हो गई हैं।
तुलसीदास ने अपने 'रामचरितमानस' में जिसे विद्वानो ने 'व्यवहार का दर्पण' कहा है, जीवन मूल्यों की, नैतिक मूल्यों की व पारिवारिक मूल्यो की पुनः स्थापना का प्रयास किया है। पारिवारिक संबंधो का निर्वाह, सदस्यो का व्यवहार एक दुसरे के प्रति कर्त्तव्य, निष्ठा, त्याग आदि को ध्यान में रखकर तुलसी ने राम लक्ष्मण, भरत सीता हनुमान, सुग्रीव, विभीषण आदि के माध्यम से जो उदात्त चरित्र व आदर्श जीवन मानस में प्रस्तुत किया है, वह इनकी समन्वय साधना का महत्त्वपूर्ण हिस्सा है। तुलसी के राम एक आदर्श राजा, आदर्श पुत्र, पति व मित्र के रूप सामने आते है तो भरत व लक्ष्मण आदर्श भाईयों का दृष्टांत प्रस्तुत करते है जिनके बीच सिंहासन पाने के लिए संघर्ष न होकर त्याग है, एक दुसरे के लिए बलिदान की भावना है। हनुमान एक आदर्श सेवक तो सुग्रीव मित्रता का पाठ सिखाते है।
इसप्रकार कहने का तात्पर्य यह है कि तुलसी ने अपने पात्रों के माध्यम से भारतीय संस्कृति के पोषक जीवन मूल्यों को, उनके उदात्त स्वरूप को प्रस्तुत कर पारिवारिक स्तर पर समानता स्थापित किए वह बहुत सफल रहा।

4. राजनीतिक क्षेत्रः तुलसीदास जी ने अपने युग की राजनीतिक विश्रृंखलता को गहराई से अनुभव किया था। उन्होंने महसूस किया कि राजा संकीर्ण विचारधारा से युक्त और आत्म केन्द्रित होते जा रहे हैं। प्रजा के कल्याण की ओर उनका तनिक भी ध्यान नहीं है। राजा और प्रजा के बीच गहरी खाई थी। उन्होंने बताया–

'सेवक कर पद नयन से, मुख सो साहिब होई' (15)

अर्थात् राजा को मुख के समान और प्रजा को हाथ पैर व नेत्र के समान होना चाहिए। जिस तरह शरीर में मुख और अन्य अंगों के बीच तालमेल होता है उसी तरह तुलसीदास जी ने राजा और प्रजा बीच तालमेल पर जोर दिया
तुलसीदास जी बड़ी ही निपुणता के साथ उन अशिक्षित, अयोग्य राजाओं की आलोचना करते है।

''गोंड़ गवाँर नृपाल कलि, यवन महा महिपाल।
साम न दाम न भेद कलि केवल दंड कराल।।'' (16)

तुलसी ने यहाँ तक कहा कि जिस राजा के राज्य में प्रजा दुखी होती है वह राजा निश्चित रूप से नरक का अधिकारी होता है यथा,

''जासु राज प्रिय राजा दुखारी
सो नृप अवसि नरक अधिकारी।'' (17)

तुलसी ने 'रामचरितमानस' के उत्तरकांड' मे कलियुग वर्णन के माध्यम से इसी स्थिति को सुधारने का, इनके फासले को कम करने का प्रयास किया है 'रामराज्य' के रूप में एक आदर्श

शासन व्यवस्था की स्थापना अपने साहित्य के माध्यम से करते हुए तुलसी बताते है कि किसी भी देश और समाज की सुख–समृद्धि के लिए शसक व जनता का प्रयास अपेक्षित है। उनके अनुसार एक शासक या कहें कि अच्छे शासक को मुख की भांति होना चाहिए जो समस्त शरीर रूपी प्रजा का पालन–पोषण भली प्रकार से करे

''मुखिया मुख सो चाहिए खान पान कौ एक
पालई पोषई सकल अंग तुलसी सहित विवेक (18)

और इस प्रकार दोनों की सामंजस्यपूर्ण भागीदारी से ही जीवन सुचारू रूप से चल सकता है।

5. साहित्यिक क्षेत्र में: तुलसी को साहित्यीक के क्षेत्र में काफी विरोधों का सामना करना पड़ा। उस समय भाषा कें स्तर पर काव्य रूप शैली आदि कई स्तरों पर विविधता साहित्य के में प्रवेश पा चुकी थी। भाषा की दृष्टि से काशी का वातावरण तुलसी के विरूद्ध था। पंडित लोग साहित्य के जनभाषा में लिखे जाने के विरूद्ध थे और तुलसी यह बात अच्छे से जानते थे कि जनभाषा को माध्यम बनाए बिना जनता का कल्याण संभव नहीं है इसलिए उन्होंने 'रामचरितमानस' के लिए अवधी को चुना और उसमें संस्कृत पदावली का प्रयोग भी किया। उन्होंने मात्रिक व वर्णिक दोनों प्रकार के छंदों को अपनाया है। उन्होंने प्रबंध, मुक्तक और गीति सभी काव्य–रूपों को समान महत्व दिया है।
लोक भाषा और शास्त्रभाषा के इस समन्वय के साथ–साथ तुलसी ने लोक भाषा के रूप में प्रतिष्ठित दोनों भाषाओं ब्रज और अवधी का भी समानता से प्रयोग किया है। शैलियों में भी तुलसी ने समन्वय वादी दृष्टी से काम लेते हुए सभी प्रचलित काव्य शैलियो में साहित्य सृजन किया है। इन्होंने प्रतिपाद्य विषय और प्रतिपादन शैली का सामंजस्य का निरन्तर ध्यान रखे है।
6. सांस्कृतिक क्षेत्र में: इन सबके अतिरिक्त सांस्कृतिक क्षेत्र में भी जहाँ जहाँ तुलसी ने विरोध की झलक पाई है, वहाँ–वहाँ उन्होंने उसके शमन का प्रयास किया है। यद्यपि भारतीय संस्कृति अपने आप में समन्वय का एक उत्कृष्ट उदाहरण है। समय–समय पर इस देश में कितनी ही संस्कृतियो का आगमन और आर्विभाव हुआ परन्तु वे अपने घुल मिलकर एक हो गई। कितनी ही दार्शनिक, धार्मिक, सामाजिक, साहित्यिक व सौन्दर्यमूलक विचारधाराओं का विकास हुआ, किन्तु उनकी परिणति संगम के रूप में हुई। किन्तु फिर भी कुछ विरोधी तत्व जो इसमें मौजूद थे उनके सामंजस्य का प्रयास तुलसी ने किया है जैसे कि राजन्य की, जनसामान्य और कोल–किरातों के जीवन, संस्कृति की भिन्नता को तुलसी ने वैसे ही चित्रित किया है। परन्तु राम के संबंध में इन्होंने इन सभी जीवन पद्धतियों को समन्वित रूप दिया है। और इससे भी महत्वपूर्ण हिन्दू संस्कृति के साथ मुस्लिम संस्कृति का समन्वय है। तुलसीदास ने सनातन धर्म और भारतीय संस्कृति के दृढ़निष्ठ अनुयायी होते हुए भी अपने दृष्टिकोण को उदार रखते हुए अपने काव्य धर्म का निर्वाह किया है। इसीलिए राम की सेवा मे लिखा 'विनय पत्रिका' का विधान मुगल सम्राट के पास भेजी जाने वाली अरजी की रीति पर किया है। साथ ही अरबी–फारसी की शब्दावली का भी प्रचुर मात्रा में प्रयोग किया है।
7. दार्शनिक क्षेत्र में: दार्शनिक मत–मतान्तरों के मध्य व्याप्त द्वेष को समाप्त करने के लिए तुलसी ने इनके मध्य संतुलन स्थापित करने का प्रयास किया। उन्होंने द्वेत–अद्वेत, विद्या–अविद्या, माया और प्रकृति, जगत सत्य और असत्य, जीव का भेद अभेद, भाग्य एवं पुरुषार्थ तथा जीवन मुक्ति एवं विदेहमुक्ति जैसी दार्शनिक विचारधाराओं के बीच समरसता स्थापित किया।
इनके काव्य में दार्शनिकता के भी दर्शन होते है। उत्तरकांड में उनके दार्शनिक विचार अत्यन्त स्पष्टता से व्यक्त हुए है। उन्होंने राम को ब्रह्म कहा है जो नर का रूप धारण करके रघुकुल के राजा बने है–

''परमात्मा ब्रह्म नर रूपा।
होहहि रघुकुल भूषण भूपा।। (19)

जीव के बारे मे तुलसीजी का विचार है कि जीव ईश्वर का अंश है,

अविनाश है, चेतन है और निर्मल है।
'' ईश्वर अंश जीव अविनाशी।
चेतन अमल सहज सुख राशी। (20)

संसार के बारे मं व कहते है कि सारा संसार और उसके चराचर जीव सब माया से उत्पन्न हुए है।

''मम माया संभव संसारा।।
जीव चराचर विविध प्रकारा।।'' (21)

इस प्रकार, तुलसीदास जी और उनके काव्य के विषय में जितना कहा जाए उतना कम है वे एक उच्च कोटि के समन्वयवादी कवि थे। उन्होंने जीवन के सभी क्षेत्रों में योगदान दिया है।
लोक ब्रह्म तुलसी ने भारतीय जनता की नस–नस को पहचान कर ही 'रामचरितमानस' के द्वारा समन्ववाद का अद्भुत आदर्श प्रस्तुत किया। वैसे तो हमारी भारतीय संस्कृति में सब्र और समन्वय का भाव पहले भी था और आज भी है किन्तु आज भोग की प्रवृति प्रधान हो रही है। सामाजिक व्यवस्था के तार भी छिन्न–भिन्न हो रहे हैं। विश्व स्तर पर छिन्न–भिन्न हो रहे हैं। विश्व स्तर पर आतंकवाद चुनौती बन चुका है। इस प्रकार की विषम परिस्थिति में तुलसी की लोकपरक दृष्टि एवं समरसतापूर्ण विचारधारा ही मानव जाति को मानसिक एवं आत्मिक शन्ति प्रदान कर सकती है।

संदर्भ सूची

1. हिन्दी निबंध आर. एन. गौह, जे. मिश्रा परिसंवद्धित संस्करण 2018 प्रगति प्रकाश पृष्ठ– 18।
2. वही पृष्ठ– 107।
3. रामचरितमानस, गीता प्रेस उत्तरकाण्ड 100/3।
4. वही, उत्तरकाण्ड 98/2।
5. रामचरितमानस बालकाण्ड 14/5।
6. रामचरितमानस बालकाण्ड 23/1।
7. रामचरितमानस बालकाण्ड 23/2।
8. रामचरितमानस बालकाण्ड 116/1।
9. रामचरितमानस बालकाण्ड 51/4।
10. रामचरितमानस लंकाकाण्ड 2/4।
11. रामचरितमानस उत्तरकाण्ड 115/13।
12. रामचरितमानस अयोध्याकाण्ड 193।
13. रामचरितमानस उत्तरकाण्ड 100/1।
14. रामचरितमानस उत्तरकाण्ड 99/2।
15. रामचरितमानस अयोध्याकाण्ड 306।
16. दोहावली 559।
17. रामचरितमानस अयोध्याकाण्ड 71/3।
18. रामचरितमानस अयोध्याकाण्ड 315।
19. रामचरितमानस उत्तरकाण्ड 48/4।
20. रामचरितमानस उत्तरकाण्ड 117/1।
21. रामचरितमानस उत्तरकाण्ड 85/2।